बी.ए.तृतीय वर्ष
काव्य गुण एवं काव्य दोष

काव्य गुण

शब्दकोश में गुण का अर्थ उन्नतत: विशेषता, आकर्षण अथवा शोभाकारी धर्म दोषाभाव आदि। काव्य क्षेत्र में इनका उपयोग दोषाभाव एवं काव्य के शोभावर्धक धर्म दो अर्थों में किया जाता है। काव्य के दो गुण है- ----- विधायक तत्व , विधायक तत्व जो काव्य के विधान में उसके परिपोषक में सहायक होते हैं उसे काव्य गुण कहते हैं गुणों का वर्णन सभी आचार्यों ने किया है। इसकी परम्परा भी काव्य शास्त्र के इतिहास से ही संबंधित है। आचार्य भरतमुनि ने दोष विर्पय को गुण कहकर अभिहित किया है। विषर्यस्तो: गुणा: काव्येषु कीर्तिता:। इन्होंने १० गुण माने है। आचार्य वामन गुणों को काव्य के शोभाकारक धर्म के रूप में स्वीकार किया है इनके अनुसार गुणों की संख्या २० है। उनका मत भेदवादी है। और वे गुण और अलंकार में भेद मानते हैं- काव्य शोभाया: कर्त्रारों धर्मा: गुणा:।भरतमुनि ने गुणों को अभवत्मक तत्व के रूप में स्वीकार किया और दण्डी ने स्पष्टत: उन्हें भावात्मक रूप में ,वामन भी ऐसा ही स्वीकार करते हैं, वे गुणों को काव्य का शोभाकारी धर्म मानते हैं गुण को प्रथमता: प्रतिष्ठा प्रदान करने वाले आचार्य वामन ही है। गुणों की संख्या को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। आनन्दवर्धन ने गुणों के स्वरूप में नितान्त परिवर्तन कर दिया, तथा गुणों की संख्या भी दस के स्थान पर तीन मानी- माधुर्य , ओज , प्रसाद।

माधुर्य गुण -----

चित्त का द्रुति-रूप आह्लाद, जिसमें अन्त:करण द्रवित हो जाए ऐसा आनन्द-विशेष, माधुर्य गुण कहलाता है। यह गुण संयोग, श्रृंगार, करूण, विप्रलम्भ श्रृंगार और शांत रसों में क्रम से बढ़ा हुआ रहता है। इस गुण के व्यजंक वर्ण ट, ठ, ड को छोड़कर क से म एक वर्णों की प्रधानता होती है। इस गुण में समास का सर्वथा अभाव होता है, या छोटा समास होता है। रचना मधुर होती है। उदाहरण-

निरख सखी ये खंजन आये।

फेरे उन मेरे रंजन ने इधर नयन मन भाये।।

प्रसाद गुण संपादित करें

प्रसाद गुण के व्यंजक ऐसे सरल और सुबोध पद होते हैं जिनके सुनते ही इनके अर्थ की प्रतिति हो जाए। अर्थात् वह रचना प्रसाद गुण सम्पन्न कहाती हैं जो सामाजिक के हृदय में ठीक उसी प्रकार तुरन्त व्याप्त हो जाती है जैसे सूखे ईंधन में अग्नि झट व्याप्त हो जाती है, अथवा जैसे जल स्वच्छ वस्त्र में तुरन्त व्याप्त हो जाता हैं। प्रसाद गुण के व्यंजक ऐसे सरल और सुबोध पद होते है। जिनके सुनते ही इनके अर्थ की प्रतीति हो जाए। यह गुण सभी रसों में और सभी प्रकार के रचनाओं में रह सकता है।

उदाहरण-

वह आता।

दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता।

ओज गुण -------

चित्त का विस्तार-स्वरूप दीप्तत्व ओज कहलाता है। वीर, बीभत्स और रौद्र रसों में क्रम से इस गुण की अधिकता रहती है। इसमें विशेषकर ट, ठ, ड, ढ़ व्यजंन वर्णों की प्रधानता होती हैं। इस गुण में लम्बे-लम्बे समास होते हैं और रचना उध्दात होती है। उदाहरण-

मुण्ड कटत कहूं रूण्ड नटत कहूं सुण्ड पटत घन।

गिध्द लसत कहुं सिध्द हसत सुख वृध्दि रसत मन।।

काव्य दोष

यदि उत्तम काव्य के लिए गुणों का आवश्यक है तो वहां दोषाभाव का होना भी आवश्यक है। इसलिए संस्कृत के काव्य शास्त्रियों ने दोषों के अभाव को गुण माना है। दण्डी के अनुसार- महान् निदोषिता गुणा। आचार्य भरतमुनि गुण को दोष का उल्टा मानते है- विपर्यस्तो गुणा: काव्येषु कीर्तिता:। भरतमुनि की यह मान्यता चीरकाल तक मान्य रही, परिणामस्वरूप दण्डी तक में दोष का कोई स्पष्ट लक्षण देखने को नहीं मिलता है। प्राय: सभी आचार्य दोषों के अभाव को उत्तम काव्य के लिए आवश्यक मानते हैं। इसलिए भामह को काव्य में एक भी सदोष पद स्वीकार नहीं हैं-

सर्वथा पदमप्येकं न निगाधवधयत।

विलक्षमणा हि काव्येन दु:सतनेव निन्धते।।

आचार्य मम्मट ने मुख्यार्थ के अपकर्ष को दोष कहा है। उदेश्य की प्रतीति का विघात होना ही मुख्यार्थ का अपकर्ष है। मुख्यार्थ का आशय है रस अतः रस का अपकर्ष ही काव्य दोष है। यह काव्य प्रकाशनि में कहा गया है- मुख्यार्थहतिदोषोरसश्य मुख्यस्तदाश्रयाद्वाच्य:। हिन्दी साहित्य के आचार्य मम्मट आदि के आधार पर ही काव्य दोषों का विवेचन किया है। केशवदास कविप्रिया में कहते है- दूषण सहित कवित्त से बचना चाहिए। चीन्तामणि कविकुलकलपतरू में शब्द और रस के विधातक तत्त्वों को दोष कहते हैं-

शब्द अर्थ रस को जु इत देखि परै अपकर्ष।

दीन कहत है ताकि कौ सुनै घटटु है हर्ष।।

कुलपति मिश्र के अनुसार रस निष्पति का बाधक तत्व ही दोष है-

शब्द अर्थ को प्रकट है रस समुझन नहीं देय ।

सो दूषण तन मन विथा जो को हरि लेय।।

उपयुक्त विवेचन के तर्ज पर हम कह सकते हैं कि हिन्दी के आचार्यों की दोष विषयक मन्यता संस्कृति काव्यशास्त्रों उपजीवि हैं। इन हिन्दी के आचार्यों ने मुख्यात् के बाधक तत्त्वों के रूप में काव्य दोषों को स्वीकार किया हैं।

दोष- भेदों की संख्या भरत के समय में केवल दस थी, और मम्मट तक पहुंचते-पहुंचते यह संख्या सत्तर तक पहुंच गयी। इन दोनों आचार्यों के बीच भामह, दण्डी, वामन, आनन्दवर्धन, महिमभट्ट और भोजराज ने विभिन्न दोषों का निरूपण किया। इन्हें तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता हैं, शब्द दोष, अर्थ दोष और रस दोष।

शब्द दोष ----

शब्द दोष के अन्तर्गत पद, शब्द वाक्य, दोष आते हैं। इसके अन्तर्गत श्रुतिकटुत्व, च्युतसंस्कृति, असलिलितत्व, क्लिष्टता आदि आते हैं।

श्रुतिकटुत्व काव्य में कानों को अप्रिय लगने वाले तथा कठोर शब्द की रचना श्रुतिकटुत्व कहलाती है। जैसे- सिद्ध्यर्थ गए सिध्दार्थकुमार। इसमें सिध्दान्त में श्रुतिकटुत्व हैं जिसमें मुख्यार्थ बाधित होता है।

च्युतसंस्कृति च्युतसंस्कृति अर्थात् संस्कृति से चुक जाना अर्थात् जहां किसी पद का प्रयोग व्याकरण के प्रतिकुल होना। जैसे- इस निरशता को छोड़ो, आशा से काम लो। यहां निराशा के स्थान पर निरशता का प्रयोग, व्याकरण की दृष्टि से अशुध्द है।

क्लिष्टता जहां पर ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जिसका अर्थ बड़ी कठिनाई से प्रतित हो वहां क्लिष्टतत्व दोष होता है। जैसे- अहि-रीपु- पति-तीय-सदन है। मूख्य तैरो रमनिय।। यहां अहि- रीपु, पति, तीय, सदन का अर्थ है कमल जो बड़ी कठिनाई से जाना जाता है। अतः क्लिष्टतत्व दोष है।

अर्थ दोष ----

अर्थ दोष के अन्तर्गत ग्रामयत्व, दुष्क्रम, पुनरूक्ति आदि दोष आते हैं।

ग्रामतत्व साहित्यिक रचना में ग्रामिण बोलचाल की शब्दों का प्रयोग होने पर ग्रामतत्व दोष हो जाता है। जैसे- मुड़ पर मुकुट धरे शोहत गोपाल है। यहां पर मुड़ शब्द में ग्रामतत्व दोष है क्योंकि मुड़ शब्द ग्राम में सिर के लिए प्रयोग होता है।

दुष्क्रम जहां पर शास्त्र अथवा लोक के विरूध्द क्रम होता है। वहां पर दुष्क्रमतत्व दोष होता है। जैसे- नृप! मोकों हय दीजिए अथवा मत्त गजेन्द्र। किन्तु लोक में क्रम यों होता है कि पहले हाथी मांगना, न मिलने पर, फिर घोड़ा मांगना चाहिए।

पुनरूक्ति जहां एक शब्द यह वाक्य द्वारा किसी अर्थ विशेष की प्रतिति हो जाने के बाद भी उसी अर्थ वाले शब्द या वाक्य का दोबारा प्रयोग किया जाये वहां पुनरूक्ति दोष होता है। जैसे- सब कोउ जानत तुम्हें सारे जगत जहान। यहां पर जहान शब्द संसार के अर्थ में दोबारा प्रयोग किया गया है। अत: पुनुरूक्ति दोष है।

Dr Vandana
Assistant Professor-Hindi